मध्य प्रदेश

सहायक प्राध्यापक (Assistant Professor)

मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग (MPPSC)

हिन्दी साहित्य

भाग - 1

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ सं.
इकाई - I : हिन्दी भाषा और उसका विकास		
1.	हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	1
2.	हिन्दी का भौगोलिक विस्तार	1
3.	पालि	1
4.	आधुनिक भारतीय आर्यभाषा	11
5.	हिन्दी की उपभाषाएँ	13
6.	शब्द निर्माण की प्रमुख युक्तियाँ	24
7.	हिन्दी का भाषिक स्वरुप हिन्दी का स्वनिम व्यवस्था खंड्य और खंड्येतर	48
8.	शब्द रचना [समास, संधि, उपसर्ग व प्रत्यय के भेद]	55
9.	जन-संचार माध्यमों के लिए लेखन	116

I

UNIT

हिन्दी भाषा और उसका विकास

हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

- मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ पालि, प्राकृत शौरसेनी अर्धमागधी मागधी अपभ्रंश और उनकी विशेषताएँ,
- अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिन्दी का संबंध
- आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ और उनका वर्गीकरण

हिन्दी का भौगोलिक विस्तार:

- हिन्दी की उपभाषाएँ - पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी राजस्थानी, बिहारी तथा पहाड़ी वर्ग और उनकी बोलियाँ।
- खड़ी बोली, ब्रज और अवधी की विशेषताएँ
- हिन्दी के विविध रूप - हिन्दी उई, दक्खिनी, हिन्दुस्तानी
- **हिन्दी का भाषिक स्वरूप:** हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था - खण्डेय और खण्ड्येतर हिन्दी ध्वनियों के वर्गीकरण का आधार,
- हिन्दी शब्द रचना - उपसर्ग, प्रत्यय, समास, हिन्दी की रूप रचना, लिंग वचन, कारक समास व्यवस्था के संदर्भ में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया रूप, हिन्दी वाक्य-वाक्य-रचना।
- **हिन्दी भाषा-प्रयोग के विविध रूप:** बोली, मानक बोली राजभाषा, राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा
- संचार माध्यम और हिन्दी, कम्प्यूटर और हिन्दी, हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

देवनागरी लिपि: विशेषताएँ और मानकीकरण

Unleash the topper in you

पालि

मध्यकालीन आर्य भाषा की पहली अवस्था कालखंड-सामान्य रूप से इसका कालखंड 500 ईस्वी पूर्व से ईस्वी सन् की शुरुआत तक माना गया है।

नामकरण

- विभिन्न विद्वानों ने पालि शब्द की उत्पत्ति अलग अलग शब्दों से मानी है। इनमें से कुछ व्याख्याएँ इस प्रकार हैं :-
- पालि की व्युत्पत्ति 'पल्लि' अर्थात ग्राम से स्वीकार की जा सकती है। इस अर्थ में पालि से तात्पर्य होगा 'ग्रामीण भाषा'।
- पालि शब्द की उत्पत्ति 'पाटलि' (पाटलिपुत्र) से भी मानी गई है इस संदर्भ में पालि का अर्थ होगा मगध की भाषा।
- पालि शब्द का तीसरा सबंध पंक्ति से माना गया है। बुद्ध वचनों में जो पंक्तियों प्रयुक्त की गई हैं, उन्हें भी पालि कहा जाता है। बुद्ध **साहित्य इसी भाषा में होने के कारण** इस मत को काफ़ी अधिक महत्व दिया जाता है।
- कुछ भाषा वैज्ञानिक 'पालि' शब्द को प्राकृत शब्द का तदन्द्रव रूप मानते हैं। उनके अनुसार प्राकृत से पहले पाइल तथा अंत में पालि शब्द का विकास हुआ। इस दृष्टि से प्रकृति का ही विशेष रूप पालि है।
- कुछ विद्वानों ने यह भी माना है कि पालि का अर्थ पालने वाली है। यह मत मानने वाले विद्वान पालि को बौद्ध साहित्य को पालने वाली या रक्षा करने वाली भाषा मानते हैं।

विद्वान

- **आचार्य विधुशेखर** — पंति > पत्ति> पट्ठि> पल्लि पालि
- **मैक्स वालेसर**—पाटलिपुत्र या पालि
- **भिक्षु जगदीश काश्यप**-परियाय> पलियाय> पालियाय> पालि
- **भंडारकर व वाकर नागल**—प्राकृत> पाकट> पाअड> पाउल> पालि
- भिक्षु सिद्धार्थ-पाठ> पाळ> पाळि> पालि कोसांबी—पाल् > पालि
- उदयनारायण तिवारी —पा + णिज् + लि = पालि
- भाषा वैज्ञानिकों की सामान्य मान्यता यह है कि पालि शब्द का वास्तविक संबंध पवित या प्राकृत शब्द से है। पंक्ति से इसलिए कि यह भाषा मूलतः बौद्ध साहित्य से संबंधित है तथा प्राकृत से इसलिए कि भाषिक स्वरूप की दृष्टि से यह प्राकृत से काफ़ी मिलती जुलती है। कुछ विद्वानों ने इन दोनों मतों को मिलाकर इसे बौद्ध प्राकृत भी कहा।

विद्वान

- पालि भाषा प्रदेश
- श्रीलंकाई बौद्ध तथा चाइल्डर्स—मगध
- वेस्टरगार्ड तथा स्टेनकोनो—उज्जयिनी या विंध्य प्रदेश
- ग्रियर्सन व राहुल—मगध
- ओलडेन वर्ग-कलिंग
- सुनीतिकुमार चटर्जी - मध्यदेश की बोली
- देवेंद्रनाथ शर्मा - मथुरा के आसपास का भू-भाग
- **उदयनारायण तिवारी -** मध्यदेश की बोली सर्वमान्य मत पाली भाषा का प्रदेश मध्यदेश की बोली को स्वीकार किया गया है।
- सामान्यतः विद्वानों की मान्यता यही है कि यह भाषा मथुरा और उज्जैन के बीच के क्षेत्र में विकसित हुई थी, किंतु धीरे-धीरे इतनी व्यापक हो गई कि बुद्ध ने अपने धर्म के प्रचार के लिए इसी भाषा को माध्यम बनाया।

पाली में रचित महत्वपूर्ण ग्रंथ

- पालि भाषा के अध्ययन के मुख्य आधार हैं
- त्रिपिटक (बुद्ध वचन), अशोक के कुछ अभिलेख तथा तत्कालीन अन्य साहित्य।
- बौद्ध धर्म का प्रचार भारत से बाहर तक होने के कारण पालि भाषा का भी अत्यधिक क्षेत्र विस्तार हुआ।

बौद्ध धर्म से संबंधित त्रिपिटक ग्रंथ पालि में हैं - 'सुत्त पिटक' बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। इसके अंतर्गत पाँच निकाय आते हैं:-

1. खुद्दक निकाय,
2. दीघ निकाय,
3. मज्झिम निकाय,
4. संयुक्त निकाय
5. अंगुत्तर निकाय।

- 'विनय पिटक' में बुद्ध की उन शिक्षाओं का संकलन है जो उन्होंने समय-समय पर संघ संचालन को नियमित करने के लिए दी थी। विनय पिटक में निम्न ग्रंथ हैं-

1. महावरग
2. चुल्लवग्ग
3. पाचित्तिय
4. पाराजिक
5. परिवार

- (अभिधम्म-पिटक) में चित्त, चैतसिक आदि धर्मों का विशद् विश्लेषण किया गया है।

- 'अट्ठकथा-साहित्य' के प्रणेता आचार्य बुद्धघोष बतलाए जाते हैं, जिनका समय ईसा की पाँचवी शताब्दी निश्चित है।
- बुद्धघोष कृत 'विसुद्धि मग्ग' (विशुद्धमार्ग) को बौद्ध सिद्धांतों का कोश भी कहा जाता है।
- प्रो. बलदेव उपाध्याय ने पालि में उपलब्ध व्याकरण को तीन शाखाओं में विभक्त किया है।

(1) कच्चायन व्याकरण

(2) मोग्गालायन व्याकरण

(3) अग्गवंसकृत 'सहनिति'

- 'कच्चायन व्याकरण' (7 वीं शती) के रचयिता महाकच्चायन माने जाते हैं। कालक्रम में यह सर्वप्राचीन पालि व्याकरण है।
- 'कच्चायन व्याकरण' को 'कच्चान गंध' या 'सुसंधिकप्प' भी कहा जाता है।
- 'मोग्गालायन व्याकरण' के रचयिता मोग्गलान है।
- 'मोग्गालायन व्याकरण', पालि व्याकरण में सर्वश्रेष्ठ व्याकरण है। इस व्याकरण में 817 सूत्र हैं।
- 'सहनिति व्याकरण (1154 ई०) के रचयिता बर्मी भिक्षु अग्गवंश थे, ये 'अग्गपंडित तृतीय' भी कहलाते थे।
- प्रथम प्राकृत (पालि) के अंतर्गत ही अभिलेखी प्राकृत या शिलालेखी प्राकृत भी आता है। इसके अधिकांश लेख शिला पर अंकित होने के कारण इसकी संज्ञा 'शिलालेखी प्राकृत' हुई।

पालि के ध्वनि समूह का परिचय

- कच्चायन के अनुसार पालि में 41 ध्वनियाँ थीं,
- लेकिन मोग्गलायन इसमें 43 ध्वनियाँ मानते हैं।
- लेकिन कहा जाता है कि पालि में कुल 47 ध्वनियाँ हैं।
- संस्कृत से तुलना करने का ऋ, ऐ, औ स्वरों का प्रयोग पालि भाषा में नहीं मिलता है।
- पालि में दो नए स्वर ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' मिलते हैं।
- विसर्ग पालि में नहीं मिलता है।
- श, ष पालि में नहीं मिलते।
- 'ळ' व्यंजन का प्रयोग पालि में होता है लेकिन लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग नहीं मिलता है।
- मिथ्या साहश्य के कारण 'ठठ्' का प्रयोग 'ल्' के स्थान पर भी देखा जा सकता है।
- पालि में संस्कृत की कई ध्वनियों में परिवर्तन आया। ऋ का उच्चारण ख़त्म हो गया। जैसे - नृत्य>विच्य विसर्ग का स्थान स्वर 'ओ' ने ले लिया।
- ऐ, औ विलुप्त हो गए। 'ऐ' का 'ए' (ऐरावण > एरावण) 'औ' का 'ओ' (गौतम>गोतम) अथवा आँ हो गया।
- टर्नर के अनुसार पालि में वैदिक की भाँति ही संगीतात्मक एवं बलात्मक, दोनों स्वराघात थीं।
- ग्रियर्सन तथा भोलानाथ तिवारी पालि में बलात्मक स्वराघात मानते हैं। जबकि जूल ब्लॉक किसी भी स्वराघात को नहीं स्वीकार करते हैं।

व्याकरणिक संरचना

- पालि की क्रिया रचना से ही हिंदी में प्रयुक्त होने वाली क्रियाओं का विकास होना प्रारंभ हो गया था।
- पालि में तीन लिंग, तीन वाच्य तथा दो वचन (एक वचन और बहुवचन) का प्रयोग मिलता है। पालि में द्विवचन नहीं होता है।
- पालि हलंत रहित, छह कारक, आठ लकार (चार काल, चार भाव) तथा आठ गण युक्त भाषा है।
- पालि में तद्भव शब्द अधिक हैं, तत्सम शब्द कम पाए जाते हैं। परवर्ती साहित्य में कुछ विदेशी शब्द भी पाए जाते हैं।

प्राकृत

- प्राकृत को मध्यकालीन आर्यभाषा की दूसरी अवस्था माना जाता है।
- मोटे तौर पर प्राकृत का समय सन् ई. से 500 ई. तक माना जाता है।

नामकरण और क्षेत्र

- जब संस्कृत लोक व्यवहार की भाषा से अलग होकर शिष्ट जनों की भाषा बन गई तब उसका स्थान प्राकृत ने ले लिया और धीरे-धीरे भारत वर्ष में प्राकृत भारत की लोकमान्य भाषा बनकर जनसामान्य तक पहुँची।
- इस युग में संस्कृत से भिन्न जितनी भी भाषाएँ थीं उनका सामूहिक रूप प्राकृत भाषा थी जो विकसित हो रही थी।
- प्राकृत शब्द 'प्रकृतेरागतम्' व्युत्पत्ति के अनुसार प्रकृति से आने वाली भाषा है। प्रकृति का अर्थ स्वभाव, अशिक्षित जनता, अनपढ़ जीवन यापन करने वाला वह मानव समूह है, जो व्याकरणिक भाषा ज्ञान के अभाव में अपनी बात दूसरे तक पहुँचाता था।
- रुद्रट ने व्याकरण विहीन बोली जाने वाली भाषा जो सहज और स्वाभाविक रूप से वचन व्यापार है, को प्रकृति माना है और यही प्रकृति 'प्राकृत' के रूप में धीरे-धीरे विकसित होकर आगे बढ़ी अर्थात् प्रकृति जन्य भाषा ही प्राकृत है।
- कुछ अन्य विद्वानों ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया है कि प्राकृत का अर्थ "प्राक् कृतम्" अर्थात् प्राचीन काल में बोली जाने वाली भाषा। कुछ अन्य विद्वानों ने प्राकृत भाषा का व्याकरण लिखकर प्राकृत पद की व्युत्पत्ति करते हुए बताया है कि "प्रकृतेः आगतम्" प्रकृति से आई हुई भाषा।
- यहाँ उन विद्वानों ने प्रकृति का आशय संस्कृत माना है। प्राक् कृत का अर्थ है पहले से किया गया।
- प्राकृत के विकास की अवस्थाओं को किशोरीदास वाजपेयी आदि वैयाकरणों ने तीन चरणों में बाँट कर देखा है
- प्रथम प्राकृतः प्राकृत एक जनभाषा रही जो प्राचीन प्रचलित जनभाषा है।
- नमि साधु ने प्राकृत के संबंध में लिखा है 'प्राक् पूर्व कृतं प्राकृत' अर्थात् पहले से बनी हुई भाषा।
- द्वितीय प्राकृतः कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि संस्कृत भाषा के सरलीकरण के कारण प्राकृत भाषा बनी।
- हेमचंद्र ने लिखा है 'प्रकृतिः संस्कृतं तत भवं तत आगतवा प्राकृतम्' अर्थात् प्रकृति का मूल संस्कृत है और जो संस्कृत से आगत है वह प्राकृत है।
- द्वितीय प्राकृत को 'साहित्यिक प्राकृत' भी कहते हैं।
- तृतीय प्राकृतः प्राकृत के बाद की भाषा अपभ्रंश को कुछ विद्वान तृतीय प्राकृत भी कहते हैं।
- सामान्य रूप से वर्तमान में 'प्राकृत' नाम उस भाषा के लिए रूढ़ हो गया है, जो ईस्वी सन् की शुरुआत से पाँचवी शताब्दी तक प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित रही।

प्राकृत के भेद

- भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में 7 मुख्य प्राकृत तथा 7 गौण विभाषा की चर्चा की है।

मुख्य प्राकृत - गौण विभाषा

- मागधी- शाबरी
- अवन्तिजा- आभीरी
- प्राच्या- चांडाली
- सूरसेनी (शौरसेनी)- सचरी
- अर्धमागधी- द्राविड़ी
- बाह्लीक-उद्रजा
- दाक्षिणात्य (महाराष्ट्री) - वनेचरी

Unleash the topper in you

वरुचि (सातवीं शताब्दी) ने अपने प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'प्राकृत प्रकाश' में प्राकृत भाषा के चार भेद बताए हैं जो निम्नलिखित हैं :-

(1) महाराष्ट्री प्राकृत

(2) पैशाची

(3) मागधी

(4) शौरसेनी

महाराष्ट्री प्राकृत

- महाराष्ट्री को प्राकृत वैयाकरणों ने आदर्श, परिनिष्ठित तथा मानक प्राकृत माना है। इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है।
- डॉ. हार्नले के अनुसार महाराष्ट्री का अर्थ 'महान राष्ट्र की भाषा' है। महान के अंतर्गत राजपुताना तथा मध्यप्रदेश आदि आते हैं।
- जार्ज ग्रियर्सन एवं जूल ब्लाक ने महाराष्ट्री प्राकृत से ही मराठी की उत्पत्ति मानी है।
- भरतमुनि ने 'दाक्षिणात्य प्राकृत' भाषा का भेद महाराष्ट्री के लिए ही किया है। अवंती और वाह्लीक ये दोनों भाषाएँ महाराष्ट्री भाषा में अंतर्भूत है।
- डॉ. मन मोहन घोष और डॉ. सुकुमार सेन का अभिमत है कि महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी का ही विकसित रूप है।
- आचार्य दंडी ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यादर्श' में महाराष्ट्री को सर्वोत्कृष्ट प्राकृत भाषा बतलाया है ——
  "महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
  सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयाम्॥"

महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गई प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ निम्नलिखित हैं :-

(1) राजा हाल कृत 'गाहा सतसई' (गाथा सप्तशती)

(2) प्रवरसेन कृत 'रावण वहो' (सेतुबन्धः)

(3) वाक्पति कृत 'गउडवहो' (गौडवधः)

(4) हेमचंद्र कृत 'कुमारपाल चरित'।

शौरसेनी प्राकृत

- यह मूलत: शूरसेन या मथुरा के आसपास की बोली थी।
- डॉ. पिशेल के अनुसार इसका विकास दक्षिण में हुआ।
- शौरसेनी मूलतः नाटकों के गद्य की भाषा थी।
- आचार्य भरतमुनि ने लिखा भी "शौरसेनम समाश्रित्य भाषा कार्य तु नाटके।" वरुचि ने शौरसेनी प्राकृत को ही प्राकृत भाषा का मूल माना है।

पैशाची प्राकृत

- पैशाची प्राकृत को पैशाचिकी, पैशाचिका, ग्राम्य भाषा, भूतभाषा, भूतवचन आदि से भी संबोधित किया जाता है।
- जार्ज ग्रियर्सन ने पैशाची भाषा-भाषी लोगों का आदिम-वास-स्थान उत्तर-पश्चिम पंजाब अथवा अफ़ग़ानिस्तान को माना है तथा इसे 'दरद' से प्रभावित बताया।
- लक्ष्मीधर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'षड् भाषा चंद्रिका' में राक्षस, पिचारी तथा नीच पात्रों के लिए पैशाची भाषा का प्रयोग बतलाया है (रक्ष पिशाचनीचेषु पैशाची द्वितयं भवेत)।
- मार्कण्डेय ने 'प्राकृत सर्वस्व' में कैकय पैशाची, शौरसेन पैशाची और पांचाल पैशाची, इन तीन प्रकार की पैशाची भाषाओं का तीन देशों के आधार पर नामकरण किया है।

मागधी प्राकृत

- मागधी प्राकृत मगध देश की भाषा रही है। मार्कण्डेय ने शौरसेनी से मागधी की व्युत्पत्ति बताई है। (मागधी शौरसेनीत:)।
- मागधी के शाकारी, चांडाली और शाबरी, ये तीन प्रकार मिलते हैं।
- मागधी प्राकृत का प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है।
- भरतमुनि के अनुसार मागधी अन्तःपुर के नौकरों, अश्वपालों आदि की भाषा थी।

Toppersnotes
Unleash the topper in you

अर्धमागधी प्राकृत

- अर्धमागधी प्राकृत को 'जैन अर्धमागधी' भी कहते हैं क्योंकि जैन साहित्य इस भाषा में अत्यधिक मात्रा में मिलता है।
- हिंदी की एक उपभाषा पूर्वी हिंदी का विकास इसी से हुआ है।
- जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार यह मध्य देश (शूरसेन) और मगध के मध्यवर्ती देश (अयोध्या या कोसल) की भाषा थी।
- श्रीजिनदा सगणिमहत्तर (7वीं शताब्दी) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'निशीथचूर्णि' में अर्धमागधी को मगध देश के अर्ध प्रदेश की भाषा होने के कारण अर्धमागध कहा है (मगहद्ध विसयभाषा निबद्धं अद्धभागहं)। अर्धमागधी का प्रयोग मुख्यतः जैन-साहित्य में हुआ है।
- भगवान् महावीर का संपूर्ण धर्मोपदेश इसी भाषा में निबद्ध है। जैनियों ने अर्धमागधी को 'आर्ष', 'आर्षी','ऋषिभाषा' या 'आदिभाषा' नाम से भी संबोधित किया है।
- डॉ० जैकोबी ने प्राचीन जैन सूत्रों की भाषा को प्राचीन महाराष्ट्री कहकर 'जैन महाराष्ट्री' नाम दिया है।
- आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में अर्धमागधी को चेट, राजपूत एवं सेठों की भाषा बताया है।

हेमचंद्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्राकृत-व्याकरण' में प्राकृत भाषा के तीन और भेदों की चर्चा की, जो निम्न है-

(1) आर्षी (अर्धमागधी)

(2) चूलिका पैशाची

(3) अपभ्रंश।

- हेमचंद्र को प्राकृत का पाणिनी माना जाता है।
- हेमचंद्र की 'चूलिका-पैशाची' को ही आचार्य दंडी ने 'भूत भाषा' कहा है।

प्राकृत की ध्वनि संरचना संबंधी विशेषताएँ

- विसर्गयुक्त अकारांत शब्द विसर्गहीन ओंकारांत शब्दों में परिवर्तित होने लगे। उदाहरण के लिए- वीर: > वीरो पालि में 'य' व्यंजन का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता था, जबकि प्राकृत में प्राय: 'य' समाप्त होने लगा और उसके स्थान पर 'ज' प्रयुक्त होने लगा। उदाहरण के लिए यश > जस प्राकृत में पहली बार एक नई परंपरा शुरू हुई जिसे 'क्षतिपूरक दीर्घीकरण' कहा जाता है। यह संस्कृत से हिंदी के विकास में एक महत्वपूर्ण सोपान है।
- इसके अंतर्गत द्वित्वीकृत रूप में प्राप्त व्यंजन का भी मूल व्यंजन बचा रहा किंतु दूसरे व्यंजन के स्थान पर वह स्वर से युक्त होकर दीर्घरूप में व्यक्त होने लगा। उदाहरण के लिए-जिव्हा जिब्भा > जीभ। व्याकरणिक संरचना में परिवर्तन के रूप में प्राकृत में परसर्गों का विकास पालि की तुलना में काफ़ी अलग स्तर पर दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, इस काल में 'कए', 'केरक' तथा 'मज्झ' परसर्ग दिखते हैं, जो आगे चलकर 'का, के, की' और 'में' के रूप में विकसित हुए।
- प्राकृत में तद्भव के स्थान पर पुनः तत्समीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है जिसकी मात्रा आगे चलकर अपभ्रंश में काफ़ी अधिक बढ़ जाती है। संस्कृत की केंद्रीकृत भाषिक स्थिति के विपरीत प्राकृत में पहली बार भाषिक विकेंद्रीकरण होना आरंभ हुआ और स्थान भेद से विभिन्न प्राकृत विकसित हुईं, जिन्होंने आधुनिक हिंदी की उपभाषाओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अपभ्रंश

- विद्वानों ने 'अपभ्रंश' को एक संधिकालीन भाषा कहा है।
- 'अपभ्रंश' मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है।
- (अपभ्रंश' के सबसे प्राचीन उदाहरण भरतमुनि के 'नाट्य शास्त्र' में मिलते हैं, जिसमें 'अपभ्रंश' को 'विभ्रष्ट' कहा गया है।
- भर्तृहरि के 'वाक्यपदीयम्' के अनुसार सर्वप्रथम व्याडि ने संस्कृत के मानक शब्दों से भिन्न संस्कारच्युत, भ्रष्ट और अशुद्ध शब्दों को अपभ्रंश' की संज्ञा दी।

भर्तृहरि ने लिखा है-

"शब्दसंस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षते।

तमपभ्रंश मिच्छन्ति विशिष्टार्थ निवेशिनम्॥"

- ‘अपभ्रंश’ शब्द का सर्वप्रथम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि के 'महाभाष्य' में मिलता है।
- महाभाष्यकार ने ‘अपभ्रंश’ का प्रयोग ‘अपशब्द’ के समानार्थक के रूप में किया है-

"भूयां सोऽपशब्दाः अल्पीयांसः शब्दाः इति।

एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः॥"

- डॉ. भोलानाथ तिवारी और डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार, भाषा के अर्थ में ‘अपभ्रंश’ शब्द का प्रथम प्रयोग 'चण्ड' (6वीं शताब्दी) ने अपने ‘प्राकृत-लक्षण’ ग्रंथ में किया है। (न लोपोऽभंशेऽधो रेफस्य)।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, '‘‘अपभ्रंश’ नाम पहले पहल बलभी के राजा धारसेन द्वितीय के शिलालेख में मिलता है जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन (वि. सं. 650 के पहले) को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का कवि कहा है।"

भामह ने ‘काव्यालंकार’ में अपभ्रंश को संस्कृत और प्राकृत के साथ एक काव्योपयोगी भाषा के रूप में वर्णित किया है-

- "संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा।"
- आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने अपभ्रंश को ‘ण-ण भाषा’ कहा है।

आचार्य दंडी ने ‘काव्यादर्श’ में समस्त वाङ्मय को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र, इन चार भागों में विभक्त किया है"

तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृत प्राकृतं तथा।

अपभ्रंशश्च मिश्रज्चेत्याहुशयाश्चतुर्विधम।।"

- आचार्य दंडी ने ‘काव्यादर्श’ में अपभ्रंश को 'आभीर' भी कहा है।
- भरतमुनि ने अपभ्रंश को ‘आभीरोक्ति’ कहा। वाग्भट्ट और हेमचंद्र ने अपभ्रंश को ‘ग्रामभाषा’ से संबोधित किया।
- अपम्रंश को विद्वानों ने विभ्रष्ट, आभीर, अवहंस, अवहट्ट, पटमंजरी, अवहत्थ, औहट, अवहट आदि नामों से भी पुकारा है।
- ग्रियर्सन, पिशेल, भंडारकर, चटर्जी, वुलनर आदि विद्वानों ने अपभ्रंश को देश भाषा माना है, जबकि कीथ, याकोबी, ज्यूलब्लाख, अल्सडार्फ आदि विद्वानों ने अपभ्रंश को देश भाषा नहीं माना है। रुद्रट ने ‘काव्यालंकार’ में जिन छः भाषाओं का उल्लेख किया है, उनमें अपभ्रंश भी है।
- दामोदर पंडित ने ‘उक्तिव्यक्तिप्रकरण’ में कोसल की भाषा को अपभ्रष्ट कहा है।
- महाकवि कालिदास की कृति ‘विक्रमोर्वशीयम्’ के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के कुछ छंद मिलते हैं। धनपाल द्वारा रचित ‘भविस्सयत कहा’ अपभ्रंश का प्रथम प्रबंध काव्य है। डॉ. याकोबी ने इसका संपादन किया था।

अपभ्रंश की रचनाएँ

- आठवीं शताब्दी में सिद्ध साहित्य के विकास में पूर्वी प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश मिलती है। बाद के समय में बौद्ध, रासो तथा विशेषकर जैन साहित्य की रचनाओं में अपभ्रंश के प्रयोग दिखाई देते हैं।
- स्वयंभू (8वीं सदी) कृत 'पउमचरिउ', पुष्पदंत (10वीं सदी) रचित ‘महापुराण’ अपभ्रंश के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।
- अपभ्रंश में रचित अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं :-
- 'जसहर चरिउ', 'णायकुमार चरिउ', 'जिनदत्त कहा', ‘भविस्यत कहा’, 'पाहुड़ दोहा' आदि। कालिदास के नाटकों में भी निम्नवर्ग के पात्र इसी भाषा का प्रयोग करते हैं।

अपभ्रंश के भेद

- विभिन्न विद्वानों ने अपभ्रंश के निम्नलिखित भेद बताए हैं।
- नमि साधु ने अपभ्रंश के तीन भेद माने हैं :-

  (1) उपनागर, (2) आभीर, (3) ग्राम्य
- मार्कण्डेय ने अपनी पुस्तक 'प्राकृत सर्वस्व' में अपभ्रंश के तीन भेद माने हैं :-

  (1) नागर- गुजरात की बोली

  (2) उपनागर- राजस्थान की बोली

  (3) व्राचड- सिंध की बोली
- याकोबी ने 'सनत्कुमार चरिउ' की भूमिका में अपभ्रंश के चार भेंदों का उल्लेख किया है :-

  (1) पूर्वी, (2) पश्चिमी (3) दक्षिणी, (4) उत्तरी
- तगारे ने अपनी पुस्तक 'हिस्टॉरिकल ग्रामर ऑफ़ अपभ्रंश' में अपभ्रंश के तीन भेद बताए हैं :-

  (1) पूर्वी, (2) पश्चिमी (3) दक्षिणी
- नामवर सिंह ने अपप्रंश को दो वर्गों में विभाजित किया है :-

  (1) पूर्वी और (2) पश्चिमी
- डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और धीरेंद्र वर्मा ने अपभ्रंश को भारतीय आर्यभाषा के विकास की एक 'स्थिति' माना है।
- इनके अनुसार 6 वीं से 11 वीं शती तक प्रत्येक प्राकृत का अपना अपभ्रंश रूप रहा होगा-जैसे मागधी प्राकृत के बाद मागधी अपभ्रंश, अर्धमागधी प्राकृत के बाद अर्धमागधी अपभ्रंश, शौरसेनी प्राकृत के बाद शौरसेनी अपभ्रंश एवं महाराष्ट्री प्राकृत के बाद महाराष्ट्री अपभ्रंश।
- अपभ्रंश भाषा की अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। अपभ्रंश को उकार बहुला भाषा कहा गया है। अपभ्रंश वियोगात्मक हो रही थी अर्थात् अपभ्रंश में विभक्तियों के स्थान पर स्वतंत्र परसर्गों का प्रयोग होने लगा था।
- अपभ्रंश में दो वचन (एकवचन और बहुवचन) और दो ही लिंग (पुलिंग और स्त्रीलिंग) मिलते हैं।

अवहट्ट

- 'अवहट्ट' भाषा का समय 900 ई. से 1100 ई. तक निश्चित किया गया है। अवहट्ट अपभ्रंश का ही परवर्ती या परिवर्तित रूप है।
- डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी को 'अवहट्ट' कहा है।
- 'अवहट्ट' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग-ज्योतिश्वर ठाकुर ने अपने 'वर्णरत्नाकर' ग्रंथ में किया है।

अवहट्ट

- साहित्य में 14 वीं शती तक इसका प्रयोग होता रहा।
- 'संदेशरासक' (अद्दहमाण) में अवहट्ट का उल्लेख मिलता है।
- 'प्राकृत पैंगलम्' के टीकाकार वंशीधर ने इसकी भाषा को अवहट्ट माना है।
- विद्यापति ने 'कीर्तिलता' की भाषा को 'अवहट्ट' कहा है।
- सक्कय बाणी बुहजण भावड। पाउअं रस को मम्म न पावइ।
- देसिल बअणा सभ जण मिट्ठा। तं तै सण जंपऔ अवहट्ठा।।"
- भोलानाथ तिवारी ने अपभ्रंश और अवहट्ट को एक ही भाषा माना है।
- ज्ञानेश्वरी (संत ज्ञानेश्वर),राउलवेल (रोड कवि) ग्रंथ को भी कुछ विद्वान अवहट्ट का ग्रंथ मानते हैं।
- अपभ्रंश के सभी स्वरों के अतिरिक्त अवहट्ट में दो अतिरिक्त स्वर मिलते हैं- (ऐ) और 'औ'

'क्षतिपूरक दीर्घीकरण' का अवहट्ट में प्रयोग बढ़ा और पुरानी हिंदी में तो यह प्रमुख प्रवृत्ति बन गई। उदाहरण के लिए-

- कम्म > काम
- अज्ज > आज
- गृहिणी > धरणी
- अपभ्रंश की व्यंजनमाला के अतिरिक्त 'ड' और 'ढ' नए व्यंजन विकसित हुए।
- व्यंजनों में अकारण द्वित्वीकरण भी दिखता है जो अवहट्ट की अपनी विशेषता है, जैसे —कमान> कम्माण 'हि' विभक्ति या परसर्ग के प्रयोग को कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने अवहट्ट की सबसे बड़ी विशेषता माना है।

पुरानी/प्रारंभिक हिंदी

- चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने परवर्ती अपभ्रंश को ही पुरानी हिंदी कहा है।
- इस भाषा का काल लगभग तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी का है जब पहली बार हिंदी तथा उसकी बोलियाँ स्वतंत्र रूप से प्रकट होने लगी थीं।
- इस भाषा को अन्य विद्वानों ने अन्य नामों से व्यक्त किया है, जैसे आचार्य द्विवेदी इसे 'उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते हैं, पंडित वासुदेवशरण अग्रवाल इसे 'उदीयमान हिंदी' कहते हैं, तो डॉ. शिवप्रसाद सिंह इसे 'परवर्ती संक्रातिकालीन अपभ्रंश' नाम देते हैं।
- 8 वीं 9 वीं शताब्दी में सिद्धों की भाषा में हमें अपभ्रंश से निकलती हिंदी स्पष्टतः दिखाई पड़ती है।
- पउमचरिउ में भी उदीयमान हिंदी के छिटपुट उदाहरण मिलते हैं।
- विद्यापति और ज्योतिरीश्वर ठाकुर के यहाँ भी पूर्वी हिंदी के बीज मिल जाते हैं।
- खड़ी बोली का दक्खिनी रूप आरंभिक हिंदी के लिहाज़ से अधिक परिष्कृत रहा।
- शुद्ध खड़ी बोली के प्रारंभिक नमूने खुसरो के लेखन में प्राप्त होते हैं।
- हरदेव बाहरी, डॉ. माताप्रसाद गुप्त और डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया के विचार से सहमत हैं कि रोड कवि कृत राउलवेल एक मात्र ऐसी कृति है जिसमें एक भाषा के लक्षण मिलते हैं।
- अवधी, खड़ी बोली और दक्खिनी, किसी का भी एक भाषी' ग्रंथ 1250 ई. से पहले का उपलब्ध नहीं है और यही तीन भाषाएँ ऐसी हैं जिनकी परंपरा आगे चली है।
- नाथों और जोगियों की वाणी में आरंभिक हिंदी का निखरा रूप दिखाई पड़ता है।
- पुरानी हिंदी में परसर्गों का विकास काफ़ी तेज़ी से हुआ।
- सरलीकरण और वियोगीकरण की जो परंपरा पालि, प्राकृत से ही आरंभ और अपभ्रंश, अवहट्ट में काफ़ी विकसित हो गई थी, वह पुरानी हिंदी में आकर सीधे-सीधे आधुनिक आर्यभाषा के रूप में प्रकट हुई।

अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी का संबंध कालखंड

- अपभ्रंश का काल लगभग 7 वीं से 9 वीं शताब्दी है।
- अवहट्ट का काल लगभग 9 वीं से 11 वीं शताब्दी है।
- पुरानी हिंदी का काल लगभग 12 वीं से 14 वीं शताब्दी है।

ध्वनियों के आधार पर अपभ्रंश

- अपभ्रंश में ऐ और औ का अभाव है।
- ऋ का अ, इ, उ, ए में परिवर्तन होता है।
- जैसे—गृह>गेह
- अपभ्रंश में स्वरभक्ति (व्यंजन संयोग को सरल बनाने के लिए व्यंजन संयोग के मध्य स्वर लाने की प्रक्रिया) दिखाई देने लगती है। जैसे- क्रिया>किरिया

Toppersnotes
Unleash the topper in you

- अपभ्रंश में स्वर संयोग (जहाँ दो स्वर एक साथ हो) की प्रक्रिया काफ़ी मात्रा में दिखाई देती है।
- जैसे—अंधकार>अंधआर
- स्वरलोप (स्वर का समाप्त हो जाना)
- आरंभिक व अंतिम स्वरों के लुप्त होने की प्रवृत्ति है। जैसे-लज्जा>लाज
- अपभ्रंश एक 'ट' वर्ग प्रधान भाषा है।
- अपभ्रंश में केवल ‘ण’ मिलता है, ‘न’ का अभाव है।
- अपभ्रंश में ‘क्ष’ का ‘ख्ख’ में परिवर्तन हो गया।
- अल्पप्राण व्यंजन (जैसे क, ग, च, ज, त, द) का अ या य में परिवर्तन हो गया। जैसे वचन का वयण

अवहट्ट

- (ऐ) और ‘औ’ मिलवे लगते हैं, जैसे चौड़ा। अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति मिलती है।
- स्वरभक्ति अधिक मात्रा में मिलती है।
- स्वर संयोग से शब्दों को समझने में कठिनाई पैदा होने के कारण स्वरगुच्छों में संकोच की प्रवृत्ति पैदा हुई।
- जैसे—अंधआर>अंधार
- क्षतिपूरक दीर्घीकरण का आरंभ होता है। जैसे- धम्म>धाम अल्पप्राण व्यंजनों तथा महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तन की प्रवृत्ति बढ़ती गई। 'क्ष' में परिवर्तन की प्रवृत्ति बनी रही।
- केवल ण की उपस्थिति रही, न नहीं मिलता।

पुरानी हिंदी

- ऐ’ और ‘औ’ का अत्यधिक प्रयोग हुआ है।
- ऋ के अ, इ, उ, ए में परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रही अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति कम मात्रा में बनी रही।
- स्वरभक्ति अधिक मात्रा में मिलने लगती है।
- स्वर संयोग और स्वरलोप की कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती।।
- क्षतिपूरक दीर्घीकरण का और अधिक विकास होता है।
- श, ष के अलावा शेष सभी व्यंजनों का विकास हुआ।
- अल्पप्राण व्यंजनों तथा महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तन की प्रवृत्ति और अधिक बढ़ गई।
- 'क्ष' में परिवर्तन दो रूपों में हुआ-
- पश्चिम में ‘ख’ के रूप में तथा पूर्व में ‘छ’ के रूप में। जैसे पश्चिमी रूप में लक्ष्मण लखन के रूप में तथा पूर्व में लछमन के रूप में विकसित हुआ। 'न' और ‘ण’ दोनों मिलने लगते हैं।

व्याकरण के स्तर पर अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी का संबंध

- अपभ्रंश में संस्कृत के तीन लिंगों के स्थान पर दो लिंगों की व्यवस्था आरंभ हुई जो अवहट्ट और पुरानी हिंदी हिंदी में भी बनी रही साथ ही पुरानी हिंदी में स्त्रीलिंग शब्द अकारांत होने लगे।
- अपभ्रंश में संस्कृत के तीन वचनों के स्थान पर दो ही वचन एकवचन एवं बहुवचन बचे। द्विवचन का लोप हो गया। अवहट्ट में यही व्यवस्था बनी रही साथ ही संज्ञा बहुवचन के लिए न्ह, विह् परसर्गों का प्रयोग होने लगा। पुरानी हिंदी में इसके साथ ही बहुवचन बनाने के नियम निश्चित होने लगे। पुल्लिंग संख्याओं के लिए ए, व, अन, न्ह का प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा।
- अपभ्रंश में हिंदी के सर्वनामों के आरंभिक चिह्न दिखाई देने लगे, अवहट्ट में मेरा, मैं, तुम, वह जैसे सर्वनाम भी दिखाई देने लगे पुरानी हिंदी के समय सर्वनामों का अत्यधिक विकास हुआ। इस काल में आधुनिक हिंदी के प्राय सभी सर्वनाम दिखाई देते हैं।

- संज्ञा तथा कारक व्यवस्था के स्तर पर अपभ्रंश के समय निर्विभक्तिक प्रयोग आरंभ हो गए। अवहट्ट तथा पुरानी हिंदी के समय भी यही प्रवृत्ति बनी रही।
- अपभ्रंश के समय परसर्गों का आरंभिक विकास होने लगा तथा संबंध कारक में 'का' परसर्ग का विकास अपभ्रंश की प्रमुख घटना है। अवहट्ट के समय कर्ता कारक के लिए 'ने' तथा करण व अपादान के लिए 'से' परसर्ग का विकास हुआ।
- पुरानी हिंदी के समय कर्म कारक के लिए 'को' तथा अधिकरण के लिए 'पर' परसर्ग का विकास प्रमुख घटना है।
- अपभ्रंश के समय संख्यावाची विशेषणों का विकास हुआ।
- अवहट्ट के समय कृदन्तीय विशेषणों की परंपरा का विकास होने लगा।
- पुरानी हिंदी के समय कृदन्तीय विशेषणों की वृद्धि होने लगी।
- शब्दकोश के आधार पर अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी का संबंध— अपभ्रंश में तद्भव शब्द सबसे अधिक हैं जिनका अनुपात अवहट्ट और पुरानी हिंदी में कुछ कम होने लगा।
- अपभ्रंश के साथ देशज शब्दों का विकास आरंभ हुआ जो अवहट्ट और पुरानी हिंदी के साथ आगे बढ़ा।
- अपभ्रंश में अरबी-फ़ारसी परंपरा के विदेशज शब्दों का आगमन होना आरंभ हुआ। अवहट्ट और पुरानी हिंदी के साथ विदेशज शब्दों की मात्रा और

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा

- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ है।
- आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का सर्वप्रथम वर्गीकरण डॉ. ए. एफ. और डॉ. हार्नले ने सन् 1880 ई. में किया।
- डॉ. हार्नले ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को 4 वर्गों में विभाजित किया।

  (1) पूर्वी गौडियन—पूर्वी हिंदी, बंगला, असमी, उड़िया।

  (2) पश्चिमी गौडियन—पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी।

  (3) उत्तरी गौडियन-गढ़वाली, नेपाली, पहाड़ी।

  (4) दक्षिणी गौडियन-मराठी।
- डॉ. हार्नले के अनुसार जो आर्य मध्यदेश अथवा केंद्र में थे 'भीतरी आर्य' कहलाए और जो चारों ओर फैले हुए थे 'बाहरी आर्य' कहलाए।
- डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया —भाग तथा बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ओरियंटल स्टडीज़, लंडन इंस्टिट्यूशन—
- भाग 1 खंड 3 1920) अपना पहला वर्गीकरण निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत किया है-

(1) बाहरी उपशाखा-

(क) उत्तरी-पश्चिमी समुदाय- (i) लहँदा (ii) सिन्धी।

(ख) दक्षिणी समुदाय- (i) मराठी

(ग) पूर्वी समुदाय- (i) उडिया, (ii) बिहारी, (iii) बंगला, (iv) असमिया।

(2) मध्य उपशाखा-

(क) मध्यवर्ती समुदाय- (i) पूर्वी हिंदी।

(3) भीतरी उपशाखा-

(क) केंद्रीय समुदाय- (i) पश्चिमी हिंदी, (ii) पंजाबी, (iii) गुजराती, (iv) भीरनी, (v) खानदेशी, (vi) राजस्थानी।

(ख) पहाड़ी समुदाय- (i) पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली, (ii) मध्य या केंद्रीय पहाड़ी, (iii) पश्चिमी-पहाड़ी।

Unleash the topper in you

डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना ध्वनिगत एवं व्याकरण गत आधारों पर करते हुए अपना वैज्ञानिक वर्गीकरण निम्न वर्गों में प्रस्तुत किया-

(1) उदीच्य- सिन्धी, लहँदा, पंजाबी।

(2) प्रतीच्य-राजस्थानी, गुजराती।

(3) मध्य देशीय-पश्चिमी हिंदी।

(4) प्राच्य-पूर्वी हिंदी, बिहारी, उड़िया, असमिया, बंगला।

(5) दाक्षिणात्य- मराठी।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने डॉ० चटर्जी के वर्गीकरण में सुधार करते हुए अपना निम्नांकित वर्गीकरण प्रस्तुत किया-

(1) उदीच्य- सिन्धी, लहँदा, पंजाबी।

(2) प्रतीच्य- गुजराती।

(3) मध्य देशीय-राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी।

(4) प्राच्य- उड़िया, असमिया, बंगला।

(5) दाक्षिणात्य- मराठी।

भोलानाथ तिवारी ने क्षेत्रीय तथा सम्बद्ध अपभ्रंशों के आधार पर अपना वर्गीकरण निम्न ढंग से प्रस्तुत किया है-

- शौरसेनी (मध्यवर्ती) अपभ्रंश से पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ।
- मागधी (पूर्वीय) अपभ्रंश से बिहारी, बंगाली, उड़िया, असमिया भाषाओं का विकास हुआ।
- अर्धमागधी (मध्य पूर्वीय) अपभ्रंश से पूर्वी हिंदी विकसित हुई।
- महाराष्ट्री (दक्षिणी) अपभ्रंश से मराठी का विकास हुआ।
- व्राचड-पैशाची (पश्चिमोत्तरी) अपभ्रंश से सिंधी, लहँदा, पंजाबी भाषा विकसित हुई।

डॉ. हरदेव बाहरी ने आधुनिक आर्य भाषाओं को दो वर्गों में बाँटा:-

हिंदी वर्ग

- मध्य पहाड़ी, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी (ये सभी हिंदी की उपभाषाएँ हैं)।
- हिंदीतर (अ-हिंदी) वर्ग
- उत्तरी- (नेपाली)
- पश्चिमी- (पंजाबी, सिंधी, गुजराती)
- दक्षिणी- (सिंहली, मराठी)।
- पूर्वी- (उड़िया, बंगला, असमिया)।

प्रमुख आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ

- सिंधी शब्द का संबंध संस्कृत सिंधु से है। सिंधु देश में सिंधु नदी के दोनों किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है।
- सिंधी की मुख्यतः 5 बोलियाँ:- विचोली, सिराइकी, थरेली, लासी, लाड़ी है।
- सिंधी की अपनी लिपि का नाम 'लंडा' है, किंतु यह गुरुमुखी तथा फ़ारसी लिपि में भी लिखी जाती है।
- लहँदा का शब्दगत अर्थ है 'पश्चिमी'। इसके अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, हिंद की, जटकी, मुल्तानी, चिभाली, पोठवारी आदि हैं।
- लहँदा की भी सिंधी की भाँति अपनी लिपि 'लंडा' है, जो कश्मीर में प्रचलित शारदा लिपि की ही एक उपशाखा है।
- पंजाबी शब्द 'पंजाब' से बना है जिसका अर्थ हैं पाँच नदियों का देश।
- पंजाबी की लिपि लंडा थी जिसमें सुधार कर गुरु अंगद ने गुरुमुखी लिपि बनाई।

Toppersnotes
Unleash the topper in you

- पंजाबी की मुख्य बोलियाँ माझी, डोगरी, दोआबी, राठी आदि है।
- गुजराती की अपनी लिपि है जो गुजराती नाम से प्रसिद्ध है। वस्तुतः गुजराती कैथी से मिलती
- जुलती लिपि में लिखी जाती है। इसमें शिरोरेखा नहीं लगती।
- मराठी महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा है। इसकी प्रमुख बोलियाँ कोंकणी, नागपुरी, कोष्टी, माहारी आदि है।
- मराठी की अपनी लिपि देवनागरी है किंतु कुछ लोग मोड़ी लिपि का भी प्रयोग करते हैं।
- बंगला संस्क़ृत शब्द बंग+आल (प्रत्यय) से बना है। यह बंगाल प्रदेश की भाषा है।
- नवीन यूरोपीय विचार-धारा का सर्वप्रथम प्रभाव बंगला भाषा और साहित्य पर पड़ा।
- बंगला प्राचीन देवनागरी से विकसित बंगला लिपि में लिखी जाती है।
- असमी (असमिया) असम प्रदेश की भाषा है।
- इसकी मुख्य बोली विष्णुपुरिया है। असमी की अपनी लिपि बंगला है।
- उड़िया प्राचीन उत्कल अथवा वर्तमान उड़ीसा (ओड़ीसा) की भाषा है। इसकी प्रमुख बोली
- गंजामी, सम्भलपुरी, भत्री आदि है। इसकी लिपि ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित है।

उपभाषा

- उपभाषा सामान्य रूप से बोलियों के उस वर्ग को कहते हैं जिनमें समान ऐतिहासिक विरासत के
- कारण गहरे संबंध होते हैं तथा जिनकी भाषिक प्रवृत्तियाँ प्रायः एक सी होती हैं।
- एक भाषा की बहुत सी बोलियाँ होती हैं तथा उन बोलियों के बीच अलग-अलग मात्रा में निकटता और दूरी दिखाई देती है।
- निकटवर्ती बोलियाँ परस्पर गहराई से जुड़ी होती हैं, जबकि दूर की बोलियों में उतना आंतरिक तारतम्य नहीं होता।

बोलियों के निकट संबंध वस्तुतः समान ऐतिहासिक उन्द्रव पर आधारित होते हैं। हिंदी में पाँच प्रकार की प्राकृतों से ही पहले अपभ्रंशों तथा बाद में हिंदी की उपभाषाओं का विकास हुआ है। विकास की यह प्रक्रिया इस प्रकार है

- राजस्थानी प्राकृत → अपभ्रंश → राजस्थानी हिंदी (उपभाषा)
- शौरसेनी प्राकृत → शौरसेनी अपभ्रंश → पश्चिमी हिंदी (उपभाषा)
- अर्धमागधी प्राकृत → अर्धमागधी अपभ्रंश → पूर्वी हिंदी (उपभाषा)
- मागधी प्राकृत → मागधी अपभ्रंश → बिहारी हिंदी (उपभाषा)
- खस प्राकृत → खस अपभ्रंश → पहाड़ी हिंदी (उपभाषा)

हिंदी की उपभाषाएँ

- हिंदी भाषा का वर्गीकरण पाँच उपभाषाओं में किया जाता हैं- राजस्थानी हिंदी, बिहारी हिंदी, पहाड़ी हिंदी, पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

हिंदी की प्रमुख बोलियों के नामकरण कर्ता निम्नांकित हैं:-

- कौरवी बोली नाम राहुल सांकृत्यायन ने दिया।
- ब्रजबुलि बोली के नामकरणकर्ता हैं ईश्वरचंद्र गुप्त राजस्थानी (भाषा) के नामकरणकर्ता हैं ग्रियर्सन डिंगल बोली का नामकरण बाँकीदास ने किया।
- बिहारी बोली का नामकरण भी ग्रियर्सन ने किया।
- भोजपुरी के नामकरणकर्ता हैं रेमंड मैथिली का नामकरण कोलब्रुक ने किया।

उच्चारण के आधार पर हिंदी की प्रमुख बोलियों का वर्गीकरण:-

- ओकार बहुला- ब्रजभाषा, बुंदेली, कन्नौजी, मारवाड़ी, कुमाऊँनी, गढ़वाली, मालवी
- आकार बहुला- कौरवी, दक्खिनी उदासीन आकार बहुला- अवधी, बघेली इकार बहुला- भोजपुरी

राजस्थानी हिंदी

- इस उपभाषा का क्षेत्र संपूर्ण राजस्थान तथा मालवा जनपद के साथ-साथ सिंध के कुछ क्षेत्रों तक फैला हुआ है।
- इस वर्ग की बोलियाँ बोलने वालों की संख्या चार करोड़ से कुछ अधिक है।
- इस उपभाषा के अंतर्गत चार बोलियाँ आती हैं मारवाड़ी, मेवाती, मालवी तथा जयपुरी/ढूँढ़ाणी राजस्थानी हिंदी उपभाषा 'ट ' वर्ग बहुला उपभाषा है।
- इन ध्वनियों के साथ मराठी में विशेष रूप से प्रयुक्त होने वाली 'ळ' ध्वनि भी इसमें प्रयुक्त होती है।
- पुल्लिंग एकवचन शब्द इसमें प्रायः अकारांत होते हैं, जैसे हुक्को, तारो, इत्यादि।
- पुल्लिंग और स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन के अंत में आँ का प्रयोग इस उपवर्ग की एक विशेष प्रवृत्ति है जैसे तारों, राताँ इत्यादि।
- हिंदी के 'को' उपसर्ग के स्थान पर 'नै' तथा 'से' परसर्ग के स्थान पर 'सूँ' का प्रयोग इसमें किया जाता है।

मारवाड़ी

- भौगोलिक क्षेत्र : जोधपुर, अजमेर, मेवाड़, सिरोही, बीकानेर, जैसलमेर, उदयपुर, चुरू, नागौर, पाली, जालौर, बाड़मेर, पाकिस्तान के सिंध प्रांत के पूर्वी भाग में।
- राजस्थानी हिंदी की चारों बोलियों में मारवाड़ी प्रमुख बोली है।
- मेवाड़ी, सिरोही, बागड़ी, थली, शेखावटी आदि 'मारवाड़ी' की प्रमुख उपबोलियाँ हैं।
- पुरानी मारवाड़ी को ही 'डिंगल' कहा जाता है। मीरा के पद कहीं 'ब्रजभाषा' और कहीं 'मारवाड़ी' में हैं।

ढूँढ़ाणी/जयपुरी

- ढूँढ़ाणी मुख्यतः पूर्वी राजस्थान में बोली जाती है। जयपुर का पुराना नाम ढूँढ़ाण है, इस कारण से जयपुरी को ढूँढ़ाणी भी कहते हैं।
- तोरावटी, काठँड़ा, चौरासी, अजमेरी, हाड़ौती जयपुरी की उपबोलियाँ हैं।
- ढूँढ़ाणी में 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग दिखाई देता है, यथा- मणै - मनै, तूणे - तूने, वाणे वाने आदि।

मालवी

- भौगोलिक क्षेत्र : उज्जैन, इंदौर, देवास, रतलाम, भोपाल, होशंगाबाद, प्रतापगढ़, गुना, नीमच, टोंक
- लंबे समय तक उज्जैन के आस-पास का क्षेत्र मालव या मालवा नाम से प्रसिद्ध रहा, इस कारण यहाँ की बोली को मालवी कहते हैं। सोंडवाड़ी, राँगड़ी, पाटबी, रतलामी आदि मालवी की मुख्य उपबोलियाँ हैं।
- इसमें शब्द के शुरू के अक्षर में स्वर का दीर्घीकरण किया जाता है, यथा-लकड़ी-लाकड़ी, कपड़ा-कापड़ा आदि।
- 'ऐ' तथा 'औ' के स्थान पर 'ए' तथा 'ओ' का प्रयोग।
- मालवी के प्रमुख सर्वनाम हैं:- के (कौन), कीने (किसने), के (क्या) आदि।
- कारकों में कर्म के साथ 'खे' तथा करण के साथ 'ती' का प्रयोग होता है।

मेवाती

- मेवाती बोली मेव जाति के निवास स्थान मेवात क्षेत्र की बोली है।
- मेवाती की एक मिश्रित उपबोली 'अहीरवाटी' है, जो गुड़गाँव, दिल्ली, करनाल के पश्चिमी क्षेत्र आदि में बोली जाती है।
- राठी, नहरे, कठर, गुजरी आदि मेवाती की अन्य उपबोलियाँ हैं।
- मेवाती की हरियाणी से निकटता प्रायः विद्वानों ने स्वीकार की है।

'बिहारी हिंदी' उपभाषा

- इस उपभाषा में तीन प्रमुख बोलियाँ आती हैं-भोजपुरी, मगही और मैथिली।

भोजपुरी

- भोजपुरी का बोली के अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग में राजा चेतसिंह के सिपाहियों की बोली के लिए हुआ।
- बिहारी हिंदी उपभाषा की सबसे अधिक बोले जानेवाली बोली भोजपुरी है।
- बिहारी हिंदी उपवर्ग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बोली भोजपुरी है।
- लोक प्रचलन की दृष्टि से यह हिंदी की सबसे बड़ी बोली है।
- भारत के बाहर भी मॉरिशस, फ़िजी आदि देशों में यह अत्यधिक प्रचलित है।
- भिखारी ठाकुर को भोजपुरी का 'शेक्सपियर' कहा जाता है। उन्होंने 'बिदेसिया' सहित बारह नाटकों की रचना की है।

मगही

- मगही या मागधी का अर्थ है मगध की भाषा।
- मगही शब्द मागधी का विकसित रूप है।
- मगही का परिनिष्ठित रूप 'गया' ज़िले में प्रयुक्त होता है।
- मगही में पर्याप्त लोकसाहित्य उपलब्ध है।
- गोपीचंद और लोरिक के लोकगीत प्रसिद्ध हैं।
- अधिकरण कारक में 'मों' का प्रयोग तथा सर्वनाम में 'आप' का प्रयोग होता है।

मैथिली

- मैथिली का उद्भव मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। मिथिला की बोली को मैथिली कहा जाता है।
- उत्तरी मैथिली, दक्षिणी मैथिली, पूर्वी मैथिली, पश्चिमी मैथिली, छिकाछिकी और जोलहा बोली मैथिली की छः उपबोलियाँ हैं।
- साहित्यिक दृष्टि से मैथिली बिहारी हिंदी की सबसे संपन्न बोली है।
- मैथिली में 'छ' और 'ल' ध्वनियों का अत्यधिक प्रयोग होता है।
- एकवचन और बहुवचन रूपों में अंतर दिखाने के लिए सब, सबहि, लोकन जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है।
- मैथिली में प्रयुक्त सर्वनाम हैं:- अहाँ, ओकर, एकर आदि।
- इसकी क्रियाओं में कोई लिंगभेद नहीं होता।
- मैथिली संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल है।

'पहाड़ी हिंदी' उपभाषा

- पहाड़ी हिंदी उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्रों मुख्यतः कुमाऊँ तथा गढ़वाल में बोली जाती है।
- 'पहाड़ी हिंदी' पर आर्यभाषा संस्कृत, तिब्बती चीनी तथा खस का भी प्रभाव रहा है। इसकी
- साहित्यिक परंपरा नहीं मिलती है।
- इस उपवर्ग की बोलियों में सानुनासिक स्वरों की प्रधानता है।
- इसकी बोलियाँ प्रायः अकारांत है, यथा — घोड़ो, कालो, चल्यो आदि।
- 'पहाड़ी हिंदी' के अंतर्गत दो बोलियाँ आती हैं:- कुमाऊँनी और गढ़वाली।

कुमाऊँनी

- नैनीताल, अल्मोड़ा तथा पिथौरागढ़ क्षेत्र का पारंपरिक नाम कूर्मांचल है जिसे कुमाऊँ कहते हैं।
- इसकी बोली कुमाऊँनी बोली है।
- खसपरजिया, कुमैयाँ, फल्दकोटिया, पछाईं, चौगरखिया, गंगोला, दानपुरिया, सीराली, सोरियाली, अस्कोटी, जोहारी, रउचो भैंसी, भोटिया आदि कुमाऊँनी की उपबोलियाँ हैं।

- इस पर राजस्थानी का प्रभाव है। इस प्रभाव के कारण ‘ण’ और ‘ळ’ ध्वनियाँ भी शामिल हैं। कौरवी के प्रभाव के कारण अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।
- पुल्लिंग एक वचन में ‘ओ’ का बहुवचन रूप कुमाऊँनी में ‘न’ होता है, यथा- घोड़ो घोड़न आदि।
- कुमाऊँनी में कारक चिह्नों के रूप में कर्त्ता के साथ 'ले' कर्म के साथ 'कणि' तथा करण के साथ 'थे' का प्रयोग होता है। सहायक क्रिया `छ' रूप में प्रयुक्त होती है।

गढ़वाली

- बावन गढ़ियों में बंटे होने के कारण 'केदारखंड' क्षेत्र को गढ़वाल कहा जाता है और यहाँ की बोली गढ़वाली कहलाती है।
- उत्तराखंड राज्य के टिहरी गढ़वाल की बोली गढ़वाली का आदर्श रूप मानी जाती है।
- गढ़वाली बोली में भोटिया, शक, किरात, नागा और खस जातियों की भाषाओं के अनेक तत्त्व शामिल हैं।
- इस पर पंजाबी और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई पड़ता है।
- स्वरों के अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति इसमें बहुतायत दिखाई पड़ती है, यथा- छायाँ देत, पैंसा
- आदि।
- कारक चिह्नों के रूप में कर्त्ता के साथ 'ल', कर्म के साथ 'कूँ', 'कुणी' तथा करण के साथ 'से',
- 'ती' परसर्गों का प्रयोग होता है। पूर्वी हिंदी' उपभाषा पूर्वी हिंदी का क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ तक फैला हुआ है।
- प्राचीन समय में जिस क्षेत्र को उत्तरी कोसल तथा दक्षिणी कोसल कहा जाता था, वही क्षेत्र पूर्वी हिंदी का क्षेत्र है।
- इसकी सीमाओं का निर्धारण कानपुर से मिर्ज़ापुर तथा लखीमपुर से बस्तर तक किया जाता है।
- 'पूर्वी हिंदी' के अंतर्गत तीन बोलियाँ हैं:- अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।

अवधी

- 'अवधी' अवध क्षेत्र में बोली जाती है। अवध अयोध्या का तद्भव रूप है।
- इस बोली के लिए 'कोसली', 'बैसवाड़ी' शब्दों का प्रयोग भी होता है।
- 'प्राकृत पैंगलम' में पुरानी अवधी के रूप मिलते हैं।
- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार बैसवाड़ी, मिर्जापुरी तथा बघौनी अवधी की मुख्य उपबोलियाँ हैं।
- फ़िजी, त्रिनिदाद, गुयाना, मॉरिशस, दुबई आदि देशों में कुछ जनसंख्या अवधी में बातचीत भी करते हैं।

अवधी के विकास को तीन कालों में विभाजित किया गया है-

- प्रारंभ से 1400 ई. तक ‘आदिकाल’, 1400 ई. से 1700 ई. तक 'मध्यकाल' और 1700 ई. से आज तक ‘आधुनिक काल’।

बघेली

- रीवा के आसपास का क्षेत्र बघेल राजपूतों के वर्चस्व के कारण बघेलखंड कहलाया और यहाँ पर बोली जाने वाली बोली ‘बघेलखंडी’ या बघेली कहलाई।
- जुड़ार, गहोरा, तिरहारी बघेली की उपबोलियाँ हैं।
- बाबूराम सक्सेना 'बघेली' को 'अवधी' की ही एक उपबोली मानते हैं।
- अवधी और बघेली में बहुत-सी समानताएँ हैं।

छत्तीसगढ़ी

- छत्तीसगढ़ी बोली वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य की भाषा है।
- इतिहास में इस क्षेत्र को दक्षिणी कोसल भी कहा गया है।

- छत्तीसगढ़ी को ‘लरिया’ या ‘खल्टाही’ भी कहते हैं।
- सरगुजिया, सदरी, बैगानी, बिंझवाली मुख्य उपबोलियाँ हैं। भोजपुरी, मगही, बघेली, मराठी, उड़िया भाषी क्षेत्रों से घिरा होने के कारण इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से छत्तीसगढ़ी पर देखा जा सकता है।

'पश्चिमी हिंदी' उपभाषा

- ‘पश्चिमी हिंदी’ हिंदी भाषा का सबसे बड़ा उपवर्ग है, जिसका क्षेत्र अंबाला से कानपुर तक तथा
- देहरादून से महाराष्ट्र के आरंभ तक विकसित है। इसकी बोलियाँ निम्नलिखित हैं:-

ब्रजभाषा

- ब्रज का अर्थ है - 'पशुओं या गायों का समूह' या चरागाह।
- पशुपालन की अधिकता के कारण यह क्षेत्र ब्रज कहलाया और इसकी बोली ब्रजभाषा।
- ब्रज या ब्रजी एक बोली होने पर भी मध्ययुग में हिंदी प्रदेश से बाहर पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों में इसका प्रयोग हुआ और साहित्य रचा जाता रहा, इस कारण भाषा शब्द ब्रज के साथ जुड़ गया और ‘ब्रजभाषा’ शब्द बना।
- इस बोली का आरंभिक रूप आदिकालीन साहित्य में ‘पिंगल’ तथा मध्यकाल में ‘भाखा’ नाम से मिलता है।
- भूक्सा, अंतर्वेदी, भरतपुरी, डांगी, माथुरी आदि ब्रजभाषा की मुख्य उपबोलियाँ हैं।
- बंगाली कवि ईश्वरचंद्र गुप्त ने ‘ब्रजबुलि’ शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया था।
- ब्रजभाषा का विकास तीन कालों में विभाजित किया गया है।
- आरंभ से 1525 ई. तक 'आदिकाल', 1525 से 1800 ई. तक 'मध्यकाल' और 1800 ई. से अबतक ‘आधुनिक काल’।

खड़ी बोली

- खड़ी बोली का दूसरा नाम कौरवी है। 'कौरवी' का प्रयोग राहुल सांकृत्यायन ने किया था।
- बीम्स, सुनीति कुमार चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा आदि भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार खड़ी बोली का आधार कौरवी है।
- खड़ी बोली मानक हिंदी का आधार कोलबुक ने कन्नौजी' को माना, इस्टाविक तथा मुहम्मद हुसैन ने 'ब्रजभाषा' को माना और मसऊद हसन खाँ ने 'हरियाणी' को माना है।

विद्वानों के अनुसार खड़ी बोली का अर्थ

- सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार खड़ी बोली का अर्थ है — 'सीधी'।
- कामताप्रसाद गुरु खड़ी बोली का अर्थ ‘कर्कश’ से लेते हैं।
- गिलक्राइस्ट की मान्यता है कि खड़ी बोली का संबंध (गँवारू) से है।
- किशोरीदास वाजपेयी खड़ी बोली के अर्थ को खड़ी ‘पाई’ से संबंधित मानते हैं।
- अन्य भाषा वैज्ञानिक खड़ी बोली से खरी या शुद्ध का संबंध जोड़ते हैं।
- वर्तमान हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी और दक्खिनी कुछ सीमा तक खड़ी बोली पर आधारित हैं।

बुंदेली

- बुंदेली बुंदेलखंड की बोली है। बुंदेलखंड नाम बुंदेला राजपूतों के आधिपत्य के कारण पड़ा।
- भू-भाग की व्यापकता की दृष्टि से बुंदेली पश्चिमी हिंदी की सबसे व्यापक बोली है।
- बुंदेली में लोक साहित्य पर्याप्त मात्रा में है। (ईशुरी के फाग' बहुत प्रसिद्ध है।
- 'आल्हा' एक प्रसिद्ध लोकगाथा है, जिसे बुंदेली की ही एक उपबोली ‘बनाफरी’ में लिखा गया था।
- धीरेंद्र वर्मा मानते हैं कि (बुंदेली), कन्नौजी के समान ही ब्रज की एक उपबोली है।
- इसके उच्चारण में अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे — आधा> आदा, दूध> दूद आदि।

Unleash the topper in you

कन्नौजी

- कन्नौजी शब्द संस्कृत के कान्यकुब्ज शब्द से विकसित हुआ है। (कान्यकुब्ज कण्णउज्ज → कन्नौज)
- कुछ विद्वान कन्नौजी को ब्रजभाषा का ही रूप मानते हैं।
- ग्रियर्सन ने इसे अलग बोली माना है। कन्नौज जनपद का पुराना नाम पांचाल था।
- इस बोली में मध्यम 'ह' का लोप हो जाता है, जैसे- जाहि>जाइ, करहुकरठ आदि।
- हिंदी की अंतिम महाप्राण ध्वनि का यहाँ अल्पप्राणीकरण हो जाता है, जैसे - हाथ > हाँत आदि।
- कन्नौजी में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति अत्यधिक मात्रा में मिलती है, जैसे- बात> बाँत आदि।

हरियाणी (हरियाणवी)

- इसका मूल संबंध हरियाणा राज्य से है। ग्रियर्सन ने इसे बांगरु कहा।
- धीरेंद्र वर्मा ने हरियाणी को स्वतंत्र बोली नहीं माना और खड़ी बोली का ही एक रूप माना है।
- हरियाणी को 'जाटू' भी कहते हैं।
- हरियाणी में 'लोक साहित्य' पर्याप्त मात्रा में है।

दक्खिनी

- दक्खिनी हिंदी का अन्य नाम है:- दकनी, देहलवी, हिन्दवी, गूजरी।
- हैदराबाद में दक्खिनी हिंदी का एक विशिष्ट रूप प्रचलित है जिसे 'हैदराबादी हिंदी' कहा जाता है।
- 'गूजरी' इसका वह रूप है जो गुजरात के कवियों के साहित्य में प्रयुक्त है, यथा- मुहम्मद शाह कादिरी के काव्य में।
- दक्खिनी हिंदी के प्रमुख स्थान आंध्रप्रदेश, कर्नाटक व मद्रास हैं। दक्खिनी हिंदी की मुख्य
- उपबोलियाँ हैं- गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी,

दक्खिनी हिंदी की विशेषताएँ

- खड़ी बोली के सभी स्वर दक्खिनी हिंदी में मिलते हैं।
- खड़ी बोली के सभी व्यंजन इसमें भी मिलते हैं।
- इनके अतिरिक्त, 'गु' तथा 'फ' जैसी ध्वनियाँ अत्यधिक मात्रा में दिखाई देती हैं।
- ड़ के स्थान पर ड प्रयोग करने की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे- पड़ा>पडा आदि।
- महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण काफ़ी ध्वनियों में दिखाई देता है, जैसे — मूरख>मूरक, मुझे>मुजे।
- कहीं-कहीं अल्पप्राण ध्वनियों का महाप्राणीकरण भी होता है।
- उदाहरण के लिए पलक>पलख, पहचान>पछान आदि।
- एक शब्द की विभिन्न ध्वनियों के विपर्यय की प्रवृत्ति दक्खिनी की एक प्रमुख विशेषता है। उदाहरण के लिए — लखनऊ>नखलऊ,

सर्वनाम व्यवस्था इस प्रकार है:-

- उत्तम पुरुष - मेरेकूँ, हमन, मंज, मुज
- मध्यम पुरुष — तुज, तुमें, आप हिं
- अन्य पुरुष - उनन, उनने
- अन्य सर्वनाम - जित्ता, जित्ती, उत्ता, उत्ती।

क्रिया व्यवस्था के प्रमुख प्रयोग इस प्रकार हैं:-

- वर्तमानकाल- अहै, है, हैं, हूँ, हैगा
- भूतकाल- कह्या, बोल्या, था, थ्या।